

प्रश्न 11. योग के अनुसार समाधि किसे कहते हैं? समाधि के विभिन्न भेदों को समझाइए।

उत्तर—चित्त की सब वृत्तियों का निरोध ही पूर्णतया समाधि कहलाती है। यह चित्त की निरुद्धावस्था है। चित्त की चार अवस्थाएँ और भी हैं, उनके नाम क्षिप्र, मूढ़, विक्षिप्त और एकाग्र हैं। निरोध को मिलाकर ये पाँच अवस्थाएं ‘योगचित्तभूमि’ के नाम से प्रसिद्ध हैं।

यों तो किसी न किसी अंश में प्रत्येक अवस्था में मानसिक अवस्था का निरोध होता है परन्तु वह योग-साधना के अनुकूल नहीं पड़ता। क्षिप्तावस्था में चित्त रजोगुण के प्राधान्य से एक विषय से दूसरे विषय पर दौड़ता रहता है। इन्द्रियों और मन में संयम का अभाव होने से इस क्षिप्तावस्था में चित्त अस्थिर ही रहता है। मूढ़ अवस्था में तमोगुण की प्रधानता से वह प्रायः अलस एवं निद्रालु ही रहता है। नींद में कुछ काल तक के लिए वृत्तियों के तिरोहित हो जाने पर भी मूढावस्था योगावस्था से भिन्न है। मूढावस्था में तमोगुण की प्रधानता होती है और योगावस्था में चित्त की शुद्धि और सत्त्वगुण की प्रधानता अपेक्षित है। इसी प्रकार विक्षिप्तावस्था में मन यत्क्षिप्त काल के लिए किसी विषय में एकाग्र होकर भी क्षणभर में दूसरी ओर भटक जाता है। और पहले के विषय में बिल्कुल भूल जाता है। यह अवस्था भी योगावस्था से नितान्त भिन्न है। योगावस्था में सर्वांशतः चित्त की वृत्तियों का निरोध होकर अविद्यादि वृत्तियों का अभाव और उससे उत्पन्न क्लेशों का अन्त हो जाता है।

क्षिप्त मूढ़ और विक्षिप्त अवस्थाएं किसी भी तरह योगी के लिए उपयोगी नहीं हैं। इनसे अविद्या तथा तज्जन्य क्लेशों का अन्त नहीं होता अपितु उनके उत्तरोत्तर प्रसार होने की संभावना ही

रहती है। ये योग के लिए उपधातक हैं। केवल एकाग्र और निरोध ये ही दो चित्त की अवस्थाएँ योग के अनुकूल होती हैं। इन दोनों से दो प्रकार की समाधियों का जन्म होता है—सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि।

सम्प्रज्ञात समाधि—यह एक विशिष्ट चित्तवृत्ति है। एकाग्रता के आलम्बन के साथ तदाकाराकारित चित्त में अन्य सब वृत्तियाँ क्षीण होकर उसी एक वृत्ति को प्रौढ़ बनाया करती हैं। उस एकमात्र वृत्ति में ध्यान के सातत्य से प्रज्ञा का उदय होता है। यही 'प्रज्ञा' अन्य वृत्तियों का उन्मूलन करती है। ध्यान के बल से अटूट बनी हुई ध्येयालम्बनाकार चित्तवृत्ति ही 'सम्प्रज्ञात समाधि' कहलाती है। अन्य वृत्तियों के लुप्त हो जाने पर एकाग्रता के आलम्बन-विषय का भास इसमें बना ही रहता है। उन्हीं आलम्बनों के स्थूलत्व या सूक्ष्मत्व के आधार पर सम्प्रज्ञात समाधि विविध प्रकार की होती हैं।

सम्प्रज्ञात समाधि के भेद—चित्त को एकाग्रावस्था में पहुँचाने के लिए स्थूल और सूक्ष्म अनेक साधन हैं। स्थूल विषयों में अभ्यस्त मन एकाग्रता का श्रीगणेश भी स्थूल पदार्थों के माध्यम से ही करता है। इन माध्यमों का आभास ही एकाग्रचित् में रहता है। अतएव इन माध्यमों के आधार पर संप्रज्ञात समाधि के चार—(1) वितर्कानुगत, (2) विचारानुगत, (3) आनन्दानुगत और (4) अस्मितानुगत भेद होते हैं—

(1) **वितर्कानुगत**—स्थूल विषय के आलम्बन से एकाग्रचित् में जब स्थूल विषयाभास होता है तो वितर्कानुगत संप्रज्ञात समाधि होती है।

(2) **विचारानुगत**—एकाग्र चित्त के आलम्बन का विषय जब सूक्ष्म होता है तब 'विचारानुगत' सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। मन को एकाग्र करने के लिए अभ्यास करने वाले स्थूल और सूक्ष्मतर (स्थूल विषय, तन्मात्रा, इन्द्रियाँ और अहंकार) आदि विषयों को (क्रम से माध्यम) बनाते हैं। जिससे अधिकाधिक सत्त्व प्रकर्ष होता जाये।

(3) **आनन्दानुगत**—सत्त्व के अधिक प्रकर्ष के लिए जब पहले से भी सूक्ष्मतर इन्द्रियों को आलम्बन का विषय बनाकर चित्त की तदाकाराकारित वृत्ति के साथ आनन्दानुभव के पृथक् अस्तित्व का ज्ञान होता है तो उसे आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।

(4) **अस्मितानुगत**—'अस्मिता' अर्थात् अहंकार जो इन्द्रियों का भी कारण अधिक सत्त्व सम्पन्न है। मन की एकाग्रता का जब 'अहं' आलम्बन होता है, और चित्त केवल 'अहं' नृत्याकाराकारित होकर एकाग्र हो जाता है तथा अन्य वृत्तियों का ह्वास हो जाता है तो 'अस्मितानुगत' सम्प्रज्ञात समाधि होती है।

सम्प्रज्ञात समाधि एक प्रकार से योग के चरम लक्ष्य या असम्प्रज्ञात समाधि का द्वार है। सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था के अनन्तर परिपक्वपूर्ण और अचल अवस्था का उदय होता है जिसके शान्त प्रवाह में चित्त बहता है। मन की उछल-कूद समाप्त हो जाती है। प्रशान्त चित्त धर्ममेघ बनकर पुरुष के लिए कैवल्य की वर्षा करता है।

सम्प्रज्ञात समाधि का दूसरा नाम 'सबीज समाधि' भी है, वह इसलिए है कि इनमें अविद्यादि क्लेश कर्मों के बीज नष्ट नहीं होते।

असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि—जहाँ ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय तथा ध्यान, ध्याता और ध्येय एक अभिन्न और अद्वैत रूप हो जाते हैं, वही असम्प्रज्ञात समाधि होती है। सभी वृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाने से चित्त शान्त, निश्चल एवं निस्पृह हो जाता है। चित्त वृत्तियाँ कर्माशय तथा क्लेश से मुक्त हो जाती हैं। उनके निवृत्त हो जाने पर पुरुष 'स्वरूपप्रतिष्ठित' होकर ज्ञान और योग के बल से मुक्त और शुद्ध हो जाता है। समाधि भाव में उदित हुई ऋतम्भरा प्रज्ञा से उत्पन्न संस्कार क्लेश के क्षय का सम्पादन करते हैं। इसी प्रज्ञा के कारण चित्त का भटकने का अधिकार सर्वदा के लिए छिन जाता है। यथार्थ में चित्त का अधिकार तभी तक रहता है जब तक 'विवेकख्याति' का उदय नहीं होता है।

सकर्म क्लेशों तथा उनके संस्कारों के भी अस्त हो जाने से पुरुष के फिर संसार में आने की सम्भावना सर्वदा अस्त हो जाती है। जन्म-मरण रूप संसार यही रूप का बीज भी असम्प्रज्ञात समाधि से नष्ट हो जाता है। इसलिए इसे निर्बीज समाधि कहते हैं।

~~✓~~ प्रश्न 12. योग के आठ अंग कौन-कौन से हैं? विवेचना कीजिए।

उत्तर—योग के आठ अंगों का प्रयोजन—'विवेक ख्याति' को दृढ़ करने के लिए तथा उस पर अटल होकर डटे रहने के लिए ही योगाभ्यास की उपादेयता है। तभी कैवल्य की प्राप्ति की सम्भावना, आशा एवं विश्वास साकार हो सकते हैं जबकि मनुष्य का चित्त सर्वतोभावेन निरुद्ध हो जाय। इसी अचल वृत्ति को प्राप्त करने के लिए योग का उपदेश है। परन्तु योग के इस उपदेश को सुनने के पश्चात् पल्ला झाड़कर बैठ जाने से कोई लाभ नहीं, जब तक उसका अनुष्ठान न किया जाय।

अनुष्ठान के लिए कुछ तैयारी की आवश्यकता होती है। प्रायः देखा जाता है कि कोई रोगी वैद्य के पास किसी रोग की चिकित्सा के लिए जब जाता है तो वैद्य पहले उसके दोषों का प्रशमन करने का प्रयत्न करता है। दोष के शान्त होने पर ही उसमें सत्य का बीजारोपण किया जा सकता है। इसी प्रकार योगानुष्ठान के लिए अपने में शक्ति का आधात करने के लिए हमें अपने शारीरिक और मानसिक दोषों का प्रशमन करने की आवश्यकता होती है। इसी आधार पर योग ने भी बाह्य और आध्यन्तर दोषों का शमन करके शक्ति संचय के द्वारा मनुष्य को योगानुष्ठान के लिए आठ अंगों का वर्णन किया गया है। ये अंग निम्नलिखित हैं—

आठ अंग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। ये योग के आठ अंग हैं। ये साधक के मन, वचन और कार्य की शुद्धि करके उसके दोषों या विकारों से रहित करके अन्तिम योग-साधना के लिए शक्ति-संचय से सम्पन्न करके उसमें अर्हता लाने के उद्देश्य से माने गये हैं। इनमें से प्रत्येक अपने वर्ग का वाचक है। स्वतन्त्र रूप में उसका कोई अस्तित्व नहीं।

1. यम—अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का नाम यम है। किसी प्राणी से द्वेष न करना किसी प्रकार सामूहिक क्षति न पहुँचाना अहिंसा है। सर्वभूतों की हितकामना से खूब परीक्षा करके सत्य बोलने का नाम सत्य है। चोरी न करने को अस्तेय, सब प्रकार के मैथुन का परित्याग, ब्रह्मचर्य तथा अतीव आवश्यक वस्तुओं को छोड़कर किसी वस्तु का लेना ही 'अपरिग्रह' कहलाता है।

2. नियम—‘यम’ हमारे अन्तस् की वासना को शुद्ध करने वाले हैं। इनके साथ-साथ हमें बाह्य शरीर और मन की शुद्धि के लिए भी कुछ अनुष्ठान अपेक्षित होते हैं। ये अनुष्ठान ‘नियम’ हैं। ‘नियम’ भी एक वर्ग का नाम है। इस वर्ग में शौध, सन्तोष तपः, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच अनुष्ठान सम्मिलित हैं। शरीर बुद्धि के लिये नित्य करणीय स्नानादि उपायों को शौच कहते हैं। यथा लब्ध से ही प्रसन्न रहने का नाम ही सन्तोष है। इसके अभ्यास से सांसारिक तृष्णा क्षीण होती है। शीतोष्ण पदार्थों के सानिध्य से अथवा ऋतुओं के प्रभाव से उत्पन्न शीतलता और उष्णता से विचलित न होकर अचल और मौन होकर स्थित रहने का अभ्यास ही तप है। अध्यात्म-ग्रन्थों के स्वाध्याय को स्वाध्याय और ईश्वरो-पासना को ईश्वर-प्रणिधान कहते हैं।

इनमें से शौच शारीरिक बुद्धि के लिए अपेक्षित है। सन्तोष मानसिक तृष्णा को रोकने के लिए, तप योगानुष्ठान, के लिए अपेक्षित शारीरिक स्थिरता एवं अनुद्वेग के लिए तैयार करने हेतु तथा स्वाध्याय अपने लक्ष्य को स्थिर रखने के लिए तथा ईश्वर प्रणिधान वृत्तियों की निर्मलता के लिए अपेक्षित बताया गया है। समाधि ईश्वर-प्रणिधान से ही प्राप्य बताई गई है।

3. आसन—योगानुष्ठान के लिए पुरुष को ‘आसन’ अर्थात् बैठने की स्थिति का भी उपदेश दिया गया है। यह बैठक सुखदायी एवं स्थिर होनी चाहिए। पद्मासन, वीरासन आदि अनेक प्रकार के आसन बताये गए हैं। इनमें जो सुखदायी हो और जिससे अविचल रूप में बैठ सकें, उसे अपनाना चाहिए।

4. प्राणायाम—शरीर को स्वस्थ और मन को स्थिर रखने के लिये ‘प्राणायाम’ बहुत आवश्यक है। प्राणादि वायु ही अन्तःकरण को धारण करने वाले हैं। अतः उनके नियन्त्रण से अन्तःकरण या चित्त को नियन्त्रण में ले उसको समाहित करने में बड़ी सहायता मिलती है। प्राणायाम या डीप ब्रीटिंग (Deep breathing) शारीरिक स्वास्थ्य को देने वाला है, यह आधुनिक चिकित्सक भी मानते हैं। इस प्रकार चित्तवृत्ति को नियन्त्रण में रखने, मन को समाहित करने और शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ‘प्राणायाम’ अत्यन्त आवश्यक है।

बिना प्राणायाम के अत्यन्त चंचल मन और बली हो जाता है तथा निगृहीत नहीं होता। अर्जुन ने कृष्ण से मन के चाञ्चल्य के विषय में कहा था—

‘चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथिबलबद्वृढम् ।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

इस वायु के प्रचण्ड वेग के समान अदम्य मन के संयम के लिये अर्जुन को प्रोत्साहित करते हुए कृष्ण ने कहा था—

असंशयं महाबाहो ? मनो दुर्निग्रहं परम् ।

अभ्यासेन तु कौन्तेय ? वैराग्येण च गृह्यते ॥

अर्थात् यह अदभ्य मन भी दो उपायों से निगृहीत हो सकता है—एक अभ्यास और दूसरे वैराग्य से। यह प्राणायाम उसी अभ्यास का एक आवश्यक सोपान है।

यह ‘प्राणायाम’ प्राणों का व्यायाम है। यह तीन प्रकार का है—1. पूरक, 2. रेचक और 3. कुम्भक। पूरक क्रिया में श्वास को भीतर खींचना होता है और रेचक श्वास को बाहर फेंकने को कहते हैं। कुम्भक श्वास को भीतर रोकने का नाम है। प्राणायाम की विधि किसी योगी गुरु से

सीखना उचित है। प्राणायाम के द्वारा संसार के कर्मों का बन्धन शिथिल होते-होते क्षीण हो जाता है। ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् (यो. सू. 252) पर भाष्य करते हुए व्यास ने कहा है, 'तदस्य प्रकाशावरणं कर्म संसारनिबन्धनं प्राणायामा यासात् दुर्बलं भवति प्रतिक्षणं च क्षीयते।' तथा चोक्तम् तपो न परं प्राणायामा ततो विशुद्धिर्मलानां दीपिश्च ज्ञानस्येति।" अर्थात् प्राणायाम से संसार का मूल कर्म जो प्रकाश का आच्छादक है, दुर्बल होकर प्रतिक्षीण होता रहता है। इसीलिये कहा है—प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं, उसी से मल की शुद्धि और ज्ञान का प्रकाश होता है। न केवल मल-शुद्धि और ज्ञान का प्रकाश मात्र ही प्राणायाम का फल है बल्कि उससे मन में धारणा, ध्यान आदि जो अभ्यास के अलग सोपान हैं, उन पर आरूढ़ होने की योग्यता भी होती है।

5. प्रत्याहार—इन्द्रियों को तत्तद विषयों से पराड़मुख करके चित्त के समान ही उन्हें निरुद्ध करने को प्रत्याहार कहते हैं। सांसारिक राग से विद्धि विषयों में जब मन चलता है तभी इन्द्रियाँ भी ललक कर उनकी ओर चल पड़ती हैं। मन का संयम हो जाने से ही उनका भी संयम स्वतः हो जाना चाहिए। परन्तु मन चलने से इन्द्रियाँ चलती हैं ऐसा कोई नियम नहीं। कभी-कभी यह मन इन्द्रियानुगामी होता है। विषय का इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होते ही मन ललचाने लगता है। इसीलिए मन के संयम का उपदेश ही पर्याप्त न था। अतः इन्द्रियों के निरोध के लिए प्रत्याहार का उपदेश दिया गया।

विषयों के सम्पर्क से पराड़मुख इन्द्रियाँ चित्त के समान निरुद्ध हो जाती हैं। वस्तुतः मन का संयम ही मुख्य है। उसके निरुद्ध हो जाने से इन्द्रियाँ स्वतः अवरुद्ध हो जाती हैं। यही अवस्था व्यास ने अपने भाष्य में अभिव्यक्त करते हुए लिखा है—“चित्तवनिरुद्धानीन्द्रियाणि नेतरेन्द्रियजयवदुपायान्तरमपेक्षन्ते। यथा मधुकर राजानं मक्षिका उत्पत्तनमनुपत्तिं, निविशमानमनुविशन्ति तथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधे निरुद्धानीत्येषः प्रत्याहारः।” अर्थात् चित्त के निरुद्ध हो जाने पर इन्द्रियाँ निरुद्ध हो ही जाती हैं। उनके जप के लिये अन्य उपाय अपेक्षित नहीं। जैसे शहद के छत्ते से मुख्य मक्खी के उड़ने से सब मक्खियाँ उड़ जाती हैं और उसके छत्ते में ही रहने पर अन्य भी बैठी रहती हैं। यही प्रत्याहार है। इस दृष्टि से प्रत्याहार एक प्रकार से प्राणायाम का फलमात्र है।

6. धारणा—चित्त की वृत्ति को आभ्यन्तर या बाह्य किसी विषय से बाँध देना ही धारणा है। धारणा वस्तुतः आगे आने वाली समाधि का प्रथमोपाय मात्र है। इसमें चित्त को एकाग्र करने के लिये किसी आभ्यन्तर या बाह्य नाभिचक्र हृदयकमल, शिर, अथवा ज्योतिष्मान् वस्तु, नासिका के अग्रभाग या जिह्वाग् देश में चित्तवृत्ति को बाँधने का अभ्यास किया जाता है। जब धारणा परिपक्व हो जाती है तब अगली अवस्था में योग के सातवाँ अंग ध्यान की उपलब्धि होती है।

7. ध्यान—चित्त की एकाग्रता के आवलम्बन अर्थात् ध्येय के आलम्बन के प्रत्यय प्रवाह को ध्यान कहते हैं। ध्येयालम्बन की प्रतीति के (प्रत्यय के) धारावाही ज्ञान को ध्यान कहते हैं।

8. समाधि—ध्यान की चरमावस्था समाधि है। ध्यान में ध्येयाकार के आभास से रहित ध्यान और ध्येय पृथक्-पृथक् भासित होते हैं परन्तु समाधि में ध्यान ध्येय में खो जाता है। उस अभ्यास को समाधि कहते हैं जिससे चित्त की उपर्युक्त अवस्था प्राप्त होती है। धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन अंग मिलकर 'संयम' शब्द से अभिहित होते हैं। तीनों के अर्थ में इसे पारिभाषिक शब्द समझना चाहिये।